इकाई 14 दिल्ली सल्तनत की स्थापना

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- तुर्की विजय के पूर्ववर्ती सदियों के भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का ज्ञान कर सकेंगे,
- उन विभिन्न चरणों की जानकारी प्राप्त करेंगे जिनके अन्तर्गत उत्तरी भारत को विजित किया गया,
- तुर्कों की सफलता के कारणों को बता सकेंगे, और
- सल्तनत कालीन शासक वर्ग के संघर्ष, चरित्र और शक्ति के आधार की भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में हमने मध्य एशिया का संक्षिप्त विवरण किया था। जिसके अंतर्गत इसके विशेष पर्यावरण और इसके खानाबदोश योद्धाओं की परिवर्तनशील आबादी का चित्रण किया था। खानाबदोश बहुत बड़ी संख्या में अपने चरागाहों (स्टैप्स प्रदेश) का परित्याग कर बाहर आए। फलस्वरूप उनका आसपास की सभ्यता और चीन, यूरोप, पश्चिम एशिया तथा भारत के साथ संपर्क एवं टकराव हुआ।

गज़नी तथा सैलजुक साम्राज्यों का निर्माण अब्बासी खिलाफत के अवशेषों पर हुआ। अपने अंतिम विश्लेषण में ये दोनों राज्य स्थापित समाजों की संस्थाओं में विद्यमान तुर्कों के संस्कृति–संक्रमण की ही उपज थे। तुर्कों के भी मंगोलों के संपर्क में आने से उनके संगठन के स्वरूप एवं दिशा में काफी परिवर्तन हुआ।

सैलजुकों के अधीन तुर्की साम्राज्य का प्रसार भूमध्य सागर और बाइज़ैनटाइन के प्रदेशों तक हो चुका था। अनातोलिया (आधुनिक तुर्की) को ऑटोमन तुर्कों ने विजित कर लिया और वे वहाँ बस गए। जहाँ एक ओर सैलजुक साम्राज्य ने अपने को आने वाली कबीलाई जातियों के दबाव से मुक्त कर दिया था वहीं यह घुमक्कड़ जातियों की गतिविधियों से उत्पन्न हुए राजनीतिक घटनाओं के जाल में फंस गया। ख्वारिज़्मी साम्राज्य जिसने सैलजुकों की शक्ति को कम किया था, मंगोलों द्वारा नष्ट कर दिया गया। इन परिवर्तनों की इस विभीषिका एवं चक्रवात ने "पुराने विश्व" को एक पिघलते हुए बर्तन में परिवर्तित कर दिया।

इस इकाई में हम भारत पर तुर्की विजय का अध्ययन करेंगे जिसके परिणामस्वरूप 13वीं सदी ई० के प्रारंभ में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई।

14.2 भारत : 7वीं सदी ई० से 12वीं सदी ई० तक – एक रूपरेखा

इस पाठ्यक्रम के खंड 1-3 में हम पहले ही इस काल के भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का विवेचन कर चुके हैं। इस भाग में भी हम उस काल के भारत में विद्यमान परिस्थितियों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। इससे इस इकाई को समझने में आपको मदद मिलेगी।

राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था : सन् 700 ई०-1200 ई०
तुर्की विजय से पूर्व की पाँच शताब्दियों के इतिहास को भारतीय इतिहासकारों द्वारा "सामंतीय" व्यवस्था के रूप में वर्णित किया गया है। यद्यपि इस युग के इतिहास के विश्लेषण की इस अवधारणा की आलोचना की गई है। फिर भी, इस काल के भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं से सामंतवाद की बहुत-सी सामान्य एवं कुछ विशेष विशेषताओं का पता चलता है।

भारत में सामंतवाद की मुख्य विशेषता (जैसा कि विश्व के अन्य भागों में था, जहाँ पर यह अस्तित्व में आया था) राजाओं द्वारा अपने अधिकारियों तथा समाज के कुछ निश्चित वर्गों को भूमि अनुदान प्रदान करना था। अनुदान प्राप्तकर्ता (या सामंत) इसके बदले आवश्यकता पर राजा को सैनिकों एवं सामानों की आपूर्ति करते थे। सामंतों द्वारा एकत्रित राजस्व का एक भाग वार्षिक नज़राने के रूप में वे राजा को देते थे। शेष राजस्व का उपयोग उन सेनाओं के रख-रखाव पर खर्च करते थे, जिनका उपयोग राजा द्वारा युद्ध के समय किया जाता था।

अधिक शक्तिशाली सामंतों को भूमि अनुदान करने की आज्ञा थी। इस प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि बहुत से उप-सामंत पैदा हो गए जिससे नियंत्रण तथा अनुबंधों के पदानुक्रम का जन्म हुआ। भारत में सामंतों ने अनेक उपाधियों को धारण किया। अधिक महत्वपूर्ण सामंतों ने स्वयं को **महासामंत, महामण्डलेश्वर** आदि जैसी उपाधियाँ धारण कीं। कम महत्वपूर्ण सामंत **राजा, रणका, सामंत, ठाकुर, भोगिका** आदि कहलाते थे।

इस व्यवस्था की उत्पत्ति, भूमि पर से राजा द्वारा अपने अधिकार को अलग करना, का संकेत दूसरी सदी ई० में ब्राह्मणों को दिए जाने वाले भूमि अनुदानों से किया जा सकता है। जिन ब्राह्मणों को भूमि अनुदान दिया जाता था वे न केवल भूमि कर वसूल करते थे, बल्कि वे कानून तथा व्यवस्था को भी बनाए रखने पर ध्यान देते थे। नवीं सदी ई० से इस परंपरा का विस्तार समाज के अन्य वर्गों में भी हो गया। विशेषकर सरकारी अधिकारियों को नकद वेतन के बदले भूमि अनुदान दिए जाने लगे। समय के साथ-साथ भूमि अनुदानों की प्रवृत्ति पैतृक हो गई। इसके कारण शाही अधिकारियों एवं "सामंतों" के बीच भेद खत्म हो गया। पैतृक सामंतों की शाही अधिकारियों के तौर पर नियुक्ति होने लगी और अधिकारियों को भी उपाधियाँ प्रदान की जाने लगीं तथा शायद, सामंतीय विशेषाधिकार भी प्राप्त होने लगे।

सातवीं सदी ई० से शासक वर्ग का ग्रामीणीकरण होने लगा। इस प्रवृत्ति के कारण ऐसा वातावरण पैदा हो गया जिसके अंतर्गत शहरी जीवन में धीरे-धीरे गिरावट आने लगी (ऐसा मौर्य काल से ही होने लगा था) और इसी के साथ-साथ वाणिज्य का भी ह्रास हुआ। इसकी पुष्टि इस काल में सिक्कों की कमी से भी सिद्ध होती है। इन परिस्थितियों में अधिकारीगण एवं अभिजात वर्ग की आजीविका का आधार मात्र कृषि ही रह गई। केंद्रीकृत राजनीतिक शक्ति का विखंडन, भू-सामंतों का आविर्भाव और विशेषकर राजपूत जैसी योद्धा जातियों का उद्भव, ये सभी इस वातावरण की स्वाभाविक परिणति थे।

14.3 प्रारंभिक विजयें : लगभग 1190 ई० तक

10वीं से 11वीं सदी ई० के मध्य बहुत-सी योद्धा जातियों का उद्भव हुआ। ये योद्धा जातियाँ सैनिक शासक जातियाँ थीं और अंततः इन सभी जातियों का एक जाति 'राजपूत' में विलय हो गया। राजपूत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के राजपुत्र से हुई। जिन चार राजपूत जातियों को इस समय विशेष दर्जा प्राप्त था, वे प्रतिहार, चालुक्य, चौहान (जिन्हें चहमना भी कहा जाता था) और सोलंकी थे।

1) महमूद गज़नवी

राजनीतिक एवं सैनिक शब्दावली में महमूद गज़नवी के आक्रमण वास्तव में दिल्ली सल्तनत के पूर्वगामी थी। सन् 1000 ई० में जिस समय शाहिया राजा जयपाल को महमूद गजनवी द्वारा

पराजित किया गया था, तभी से भारत पर होने वाले उसके आक्रमण प्रति वर्ष होते रहे। यह सिलसिला उसकी मृत्यु (सन् 1030 ई०) तक चलता रहा। मुल्तान पर अधिकार करने के बाद महमूद ने पंजाब को भी अपने अधीन कर लिया। बाद में महमूद ने गंगा-यमुना दोआब पर आक्रमण किए। भारत में महमूद के आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य भारत की विशाल सम्पदा थी, जिसका बहुत बड़ा अंश नकदी, जेवरात और सोने के रूप में मंदिरों में जमा था। इसी कारणवश सन् 1010 ई०-1026 ई० तक महमूद के आक्रमणों का लक्ष्य थानेश्वर, मथुरा, कन्नौज और अंततः सोमनाथ जैसे मंदिर-नगर थे। इन आक्रमणों का अंततः परिणाम यह हुआ कि भारतीय विरोध मृतप्राय हो गया जिससे भविष्य में भारत में तुर्कों की विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया। इससे भी महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि इन अभियानों ने बाह्य खतरों का संगठित रूप से विरोध प्रस्तुत करने की भारतीय राजनीति की कमज़ोरी को स्पष्ट कर दिया।

महमूद की मृत्यु के थोड़े समय बाद ही उसके साम्राज्य का भी वही हाल हुआ जो अन्य साम्राज्यों का होता है। सत्ता के उदित होते नवीन केन्द्र, जो दुस्साहसी तुर्की सैनिकों के इर्द-गिर्द बने, ने सत्ता के पुराने केन्द्रों का स्थान ग्रहण कर लिया। गज़नवी साम्राज्य के खुरासान तथा ट्रांस ऑक्सियाना पर पहले सैलजुकों द्वारा और बाद में ख्वारिज़्म शाह द्वारा अधिकार कर लिया गया (देखें इकाई 13)। उनके अपने जन्म स्थान अफगानिस्तान पर उनकी सत्ता को शंसबनी वंश के गौर राज्य ने समाप्त कर दिया। लेकिन इस उथल-पुथल के बावजूद भी गज़नी वंश का शासन पंजाब और सिंध में सन् 1175 ई० तक कायम रहा।

उत्तर-पश्चिम भारत में गज़नी शासकों के अधीन फैले क्षेत्र को सुनिश्चित करना कठिन है। उत्तर की ओर इसके अधीन सियालकोट एवं संभवतः पेशावर था। दक्षिणी सीमाओं को चौहान राजपूतों ने काफी सीमित कर दिया था, जिन्होंने पंजाब में कुछ भागों पर पुनः अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था।

मौहम्मद गौरी के प्रारंभिक आक्रमणों का मुख्य सैनिक उद्देश्य पंजाब एवं सिंध पर अधिकार करना था। पहले के अन्य आक्रमणकारियों से भिन्न, मौहम्मद गौरी ने ज्यादा प्रचलित खैबर दर्रे के स्थान पर गोमल दर्रे द्वारा सिंध के मैदानी क्षेत्रों पर आक्रमण करने का निर्णय किया। सन् 1179 ई० तक पेशावर, उच्छ और मुल्तान पर अधिकार कर लिया गया। इसके पश्चात् लाहौर पर आक्रमण किया गया। मौहम्मद गौरी ने अब भारत में और आगे की ओर अपने विजय अभियान को बढ़ाया। थोड़े समय में ही ये सैनिक कार्यवाहियाँ प्रत्यक्ष तौर पर गंगा के मैदानों में स्थित राजपूत राज्यों के विरुद्ध होने लगीं। इन आक्रमणों का सबसे अधिक दबाव चौहान शासकों पर पड़ा, जिनके अधीन अजमेर से दिल्ली तक का भू-भाग था, जो भारत का प्रवेश द्वार था। गौरी ने 1191 ई० में भटिण्डा पर अधिकार कर लिया। दुर्ग रक्षकों ने शीघ्र ही आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन चौहान सेना ने पृथ्वीराज के नेतृत्व में गौरी की सेना पर तीव्र गति से आक्रमण किया और उसको अपमानजनक पराजय दी। लेकिन अगले वर्ष मौहम्मद गौरी विशाल सेना के साथ आया। सन् 1192 ई० की प्रसिद्ध तराइन की लड़ाई में गौरी ने चौहानों पर निर्णायक विजय हासिल की। सैन्य महत्व के सभी महत्वपूर्ण स्थानों—हाँसी, कुहराम, सरसुती जैसे—पर तुरंत अधिकार कर घेराबंदी कर ली गई। मौहम्मद गौरी दिल्ली के समीप इन्द्रप्रस्थ में कुतुबुद्दीन ऐबक के नेतृत्व में अपनी सेना को छोड़कर अपनी योजना को मध्य एशिया में कार्यान्वित करने के लिए वापस लौट गया। ऐबक को राज्य को सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाने के लिए विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए।

बोध प्रश्न 1

1) महमूद गज़नवी के भारत पर आक्रमण करने के मुख्य उद्देश्य क्या थे?

....

....

....

....

....

....

2) मौहम्मद गौरी की भारत में प्रारंभिक विजयों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

....

14.4 गौरी के आक्रमण : सन् 1192 ई० - 1206 ई०

तराइन का युद्ध भारत के इतिहास में निर्णायक साबित हुआ। इसने तुर्की सत्ता की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त किया। ठीक इसी समय से राजपूत शक्ति के अपरिवर्तनीय पतन के युग का भी सूत्रपात हो गया। कुछ समय के लिए गौरी वंश के लोगों ने सभी विजित क्षेत्रों के प्रशासन को तुरंत अपने हाथ में लेना सुविधाजनक नहीं समझा जहाँ उन्हें उचित लगा उन्होंने राजपूतों की सत्ता को जारी रहने दिया, अगर उनके द्वारा तुर्की सत्ता के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया गया। उदाहरण के तौर पर अजमेर का शासन पृथ्वीराज के पुत्र को सामंत के रूप में सौंप दिया गया। यद्यपि यह जटिल संतुलन अक्सर, स्थानीय शासकों एवं गौर वंश के शासकों के साम्राज्य विस्तार की योजना के मध्य संघर्ष के कारण, भंग होता रहता था।

कुतुबुद्दीन ऐबक के नेतृत्व में तुर्कों ने अपने राज्य का सभी दिशाओं में क्षेत्रीय विस्तार किया। सन् 1192 ई० के अंत में हाँसी की किलेबंदी करने के बाद ऐबक ने यमुना नदी के पार ऊपरी दोआब में सैनिक केन्द्रों को स्थापित किया। मेरठ एवं बरन (आधुनिक बुलन्दशहर) पर 1192 ई० में कब्जा कर लिया गया। सन् 1193 ई० में दिल्ली भी उनके अधिकार में आ गई। दिल्ली की स्थिति तथा उसकी ऐतिहासिक परम्परा के कारण तुर्कों ने उसे अपनी राजधानी बनाया। जहाँ एक ओर यह शक्ति के केन्द्र पंजाब के पड़ोस में स्थित था, वहीं यह पूर्व की ओर अभियानों को संचालित करने के लिए भी एक सुविधाजनक केन्द्र था। सन् 1194 ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने एक बार फिर यमुना नदी को पार किया और कोल (अलीगढ़) पर नियंत्रण कर लिया।

मौहम्मद गौरी ने उपरोक्त सैनिक सफलताओं से उत्साहित होकर गहढ़वाल वंश के राजा जयचन्द्र पर चन्द्रवार (एटा और कानपुर के मध्य) में आक्रमण किया। जयचन्द्र अकस्मात पराजित हो गया। इसके बाद तुर्कों ने अपने सैनिक अड्डों को बनारस, असनी जैसे महत्वपूर्ण नगरों में स्थापित किया। लेकिन राजधानी कन्नौज पर सन् 1198-99 ई० तक अधिकार न किया जा सका।

बयाना, ग्वालियर एवं अन्हिलवाड़ा जैसे अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर तुर्कों का सन् 1195-98 ई० तक अधिकार हो गया। बदायूं को सन् 1197-98 ई० में नियंत्रण में लिया गया। 13वीं सदी ई० के प्रारम्भ में "अंतिम राजपूत साम्राज्य" बुन्देलखण्ड के चन्देलों के विरुद्ध लगभग 1202 ई० में सैनिक अभियान भेजा गया। कालिन्जर, महोबा एवं खजुराहो पर नियंत्रण कर लिया गया और उनको एक सैनिक मंडल के अधीन समूहीकृत कर दिया।

सन् 1203 ई० से तुर्कों ने भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्वी प्रदेशों पर लगातार सफलतापूर्वक आक्रमण किए। मगध को बख्तियार खलजी ने सल्तनत के लिए विजित किया। उसके अधीन तुर्की सेनाओं ने बंगाल राज्य के अंदर भी प्रवेश किया, जिसपर उस समय लक्ष्मण वंश का शासन था।

सामान्य तौर पर इस काल में गौरियों ने अपने प्रभाव क्षेत्र को उत्तरी भारत के काफी बड़े भू-भाग पर कायम कर दिया था। लेकिन अभी भी इस प्रभाव क्षेत्र का आधार अस्थिर ही था। जिन क्षेत्रों को विजित कर लिया गया था, वे नियंत्रण से मुक्त होने के लिए आतुर थे। इन क्षेत्रों पर स्थायी नियंत्रण करने के लिए आगामी कई दशक लगे।

14.5 तुर्कों की सफलता के कारण

उत्तर भारत की तुर्की विजयों के लिए बहुत से तर्क दिए गए हैं। बहुत से तत्कालिक इतिहासकार इस सफलता के कारणों की व्याख्या करते हुए यह कहते हैं कि यह "ईश्वर की इच्छा" थी। ब्रिटिश इतिहासकारों ने, जिन्होंने भारतीय इतिहास के अध्ययन का प्रारंभ कुछ गहराई के साथ शुरू किया, तुर्कों की सफलता के निम्नलिखित कारण बताए हैं : गौरी की सेना के सिपाहियों की

उत्तर भारत
c. 1206 AD
मौहम्मद गौरी की विजय
क श्मी र
काबुल
गज़नी
खैबर दर्रा
पेशावर
अफ़गानिस्तान
लाहौर
दीपालपुर
मुल्तान
भटिंडा
भटनेर
उच्छ
तराईन
मेरठ
इन्द्रप्रस्थ
दिल्ली
बरन
कम्पिल
कन्नौज
बयाना
अजमेर
रणथम्भौर
कालपी
महोबा
जालौर
आबू
अन्हिलवाड़ा
प र मा र
उज्जैन
चालुक्य
चन्देल
नर्मदा न.
ताप्ती न.
तिरहुत
कूच बिहार
लखनौती (गौड़)
सेन
महानदी
गंगा
पूर्वी
जाजनगर
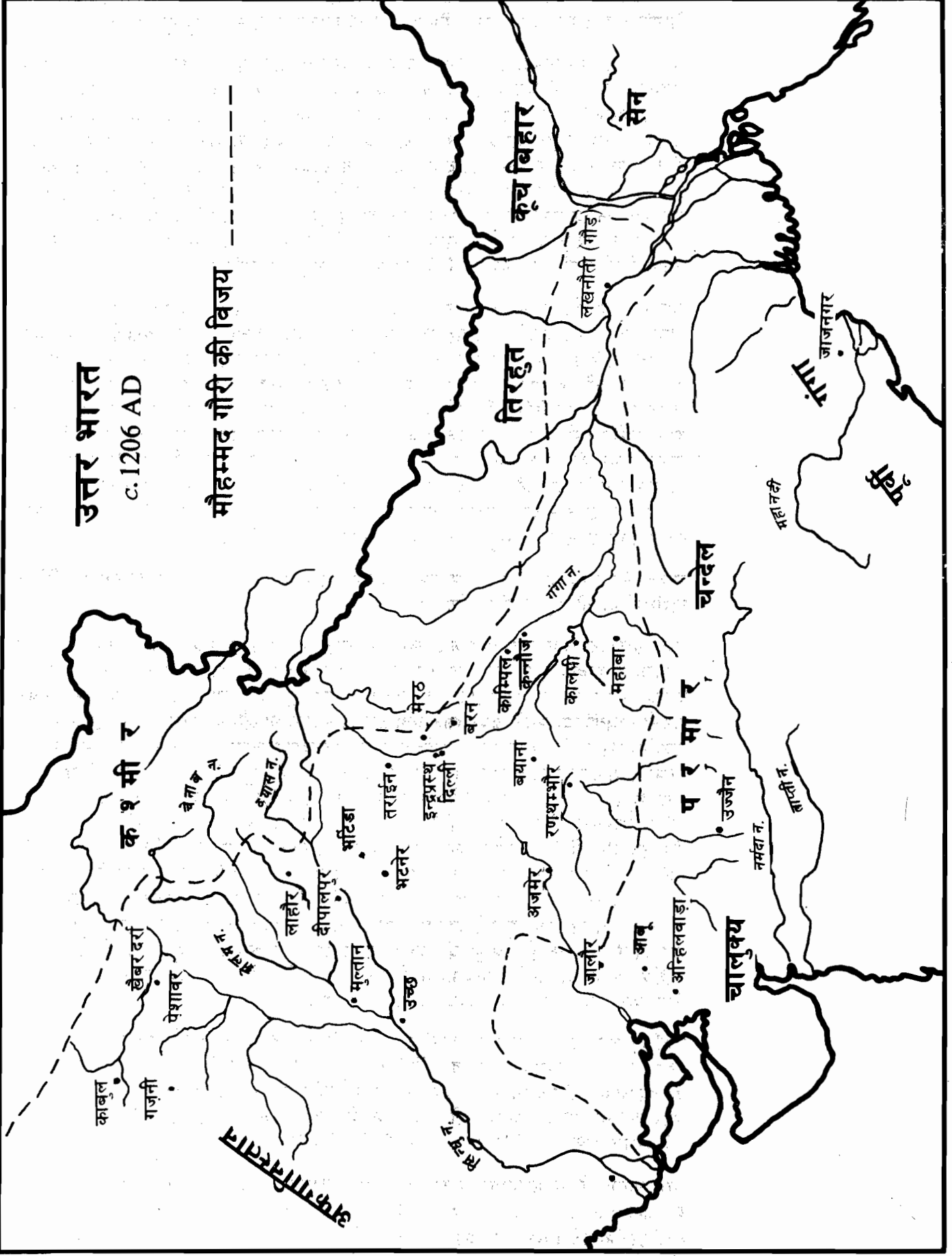
कठोर क्षेत्र के निवासी थे। उन्होंने सैलजुक सेनाओं तथा मध्य एशिया की अन्य खूंखार जातियों से युद्ध द्वारा सैन्य शक्ति और युद्ध विद्या में निपुणता हासिल कर ली थी। दूसरी ओर, भारतीय शांतिप्रिय थे और युद्ध पसंद नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त, वे छोटी-छोटी रियासतों में विभाजित थे, जिससे उनकी राज्य विस्तार की अभिलाषाओं को गहरा आघात लगा।

लेकिन तुर्कों की सफलता के लिए की गई यह व्याख्या अपर्याप्त एवं असंतुलित है। इस व्याख्या के अंतर्गत भारतीय इतिहास के सुस्पष्ट तथ्यों की अवहेलना की गई है और दूसरी ओर जिन देशों से ये आक्रमणकारी आए, उनके इतिहास को भी नज़रअंदाज कर दिया गया। यह याद रखा जाना चाहिए कि तथाकथित युद्धप्रिय मुस्लिम क्षेत्रों को सन् 1218-19 में बिना किसी विशेष विरोध के मंगोलों द्वारा रौंद डाला गया था। दूसरी ओर, तुर्कों ने जिन राजपूत राजाओं के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी -- वे न तो साहस में कम थे और न ही सैनिक भावना में। 8वीं सदी ई० से 12वीं सदी ई० तक का लम्बा समय भारत के इतिहास में युद्धों एवं आंतरिक हिंसात्मक संघर्षों की कहानियों से भरपूर है। अतः यह मानना कठिन है कि भारतीय जनता की शांतिप्रियता तथा कुछ न सीखने की प्रवृत्ति तुर्क विजेताओं की सफलता के लिए उत्तरदायी थी।

कुछ भारतीय इतिहासकार तुर्कों की सफलता का कारण इस्लाम द्वारा निर्मित विशेष प्रकार के सामाजिक तंत्र को मानते हैं। उदाहरण के तौर पर जदुनाथ सरकार उन तीन अनोखी विशेषताओं पर बल देते हैं, जिनको इस्लाम ने अरबों, बर्बरों, पठानों एवं तुर्कों को प्रदान किया था। प्रथम, इस्लाम क़ानूनी एवं धार्मिक स्तरों पर पूर्ण समानता तथा सामाजिक एकता पर बल देता है। भारत की तरह तुर्क ऐसी जातियों में विभाजित नहीं थे, जो एक-दूसरे से पूर्णरूपेण अलग थीं। दूसरे, तुर्कों का ईश्वर में पूर्ण विश्वास था और ईश्वर की इच्छा उनको प्रोत्साहित करती, जिसके कारण उनके अंदर एक सुनिश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने की भावना थी। तीसरी और अंतिम, इस्लाम ने तुर्क विजेताओं को मदिरापान से दूर रखने की प्रेरणा दी, जिसने, सरकार के अनुसार, राजपूत, मराठा और दूसरे भारतीय शासकों का सर्वनाश किया। इस व्याख्या में भी कुछ सत्यता का अंश हो सकता है, परन्तु यह व्याख्या भी अपर्याप्त प्रतीत होती है।

भारत की पराजय के संभवतः दो महत्वपूर्ण कारण थे। प्रथम, उस समय की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ और दूसरी सैनिक तैयारियाँ।

गुर्जर-प्रतिहारों के पतन के बाद कोई एक राज्य उनका स्थान ग्रहण न कर सका। उनके स्थान पर कन्नौज में गहढ़वाल, मालवा में परमार, गुजरात में चालुक्य, अजमेर में चौहान, दिल्ली में तोमर, बुन्देलखण्ड में चन्देल, आदि छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। एकता स्थापित करने के स्थान पर उनकी कार्यवाहियाँ अपने-अपने छोटे क्षेत्रों तक ही सीमित थीं और वे निरंतर एक-दूसरे के साथ संघर्षरत थे। केन्द्रीकृत सत्ता का अभाव एक ऐसा महत्वपूर्ण कारण था जिससे सैन्य बलों की शक्ति तथा क्षमता पर कुप्रभाव पड़ा। फख्र मुदब्बिर ने अपनी पुस्तक **आदाब-उल हर्ब वा अल शुजात** में उल्लेख किया है कि भारतीय सेनाएँ "सांमतीय सैन्य भर्ती" के आधार पर गठित थीं। प्रत्येक सेना की एक टुकड़ी सीधे एक तत्कालिक सामंत सरदार के अधीन थी, न कि राजा के। अतः सेना में "नेतृत्व की एकता" का अभाव था। इसके अतिरिक्त, क्योंकि कुछ ही जातियाँ एवं वंश सैनिक व्यवसाय को अपना सकते थे, ज्यादातर जनता को सैनिक प्रशिक्षण से अलग रखा जाता। इस प्रवृत्ति ने देश की सामान्य जनता को देश की सुरक्षा के प्रति असम्बद्ध बना दिया। हम देखते हैं कि जिस समय तुर्कों ने आक्रमण किए, उस समय शायद ही भारतीय जनता ने अपने राजाओं की मदद की हो। **अछूत** की अवधारणा ने भी सैनिक क्षमता पर कुठाराघात किया, क्योंकि इस अवधारणा ने श्रमविभाजन को असंभव बना दिया जिससे सैनिकों को युद्ध करने से लेकर पानी भरने तक के सभी कार्यों को स्वयं करना पड़ता था।

तुर्कों की सफलता का दूसरा महत्वपूर्ण कारण उनकी उच्च सैन्य तकनीक तथा युद्ध कौशल था। स्टैप्स के इन खानाबदोशों को युद्ध में "घोड़ों के युग" को प्रारंभ करने का श्रेय है। तुर्कों ने लोहे **की रकाब** एवं घोड़े की **नाल** का उपयोग किया। इससे उनकी मारक क्षमता में वृद्धि हुई और अश्वरोही सेना की क्षमता भी बढ़ी। जहाँ एक ओर घोड़े की नाल ने घोड़े को गतिशील बनाया, वहीं रकाब ने सैनिकों को विशेष लाभ की स्थिति में ला दिया।

आम धारणा थी कि भारतीयों की पराजय का मुख्य कारण युद्ध में हाथियों का उपयोग था, अब यह अधिक तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। हमें **तबकात-ए-नासिरी** या अन्य किसी स्रोत में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता, जिससे इस विचार की पुष्ट होती हो। राजा जयपाल का उदाहरण इस संदर्भ में एक अपवाद है, जहाँ उसके हाथी युद्ध से भाग गए थे। इस तरह के उदाहरण अन्यथा बहुत कम हैं। वास्तव में, महमूद गज़नवी भारत से बहुत से हाथी अपने राज्य में ले गया था, जहाँ
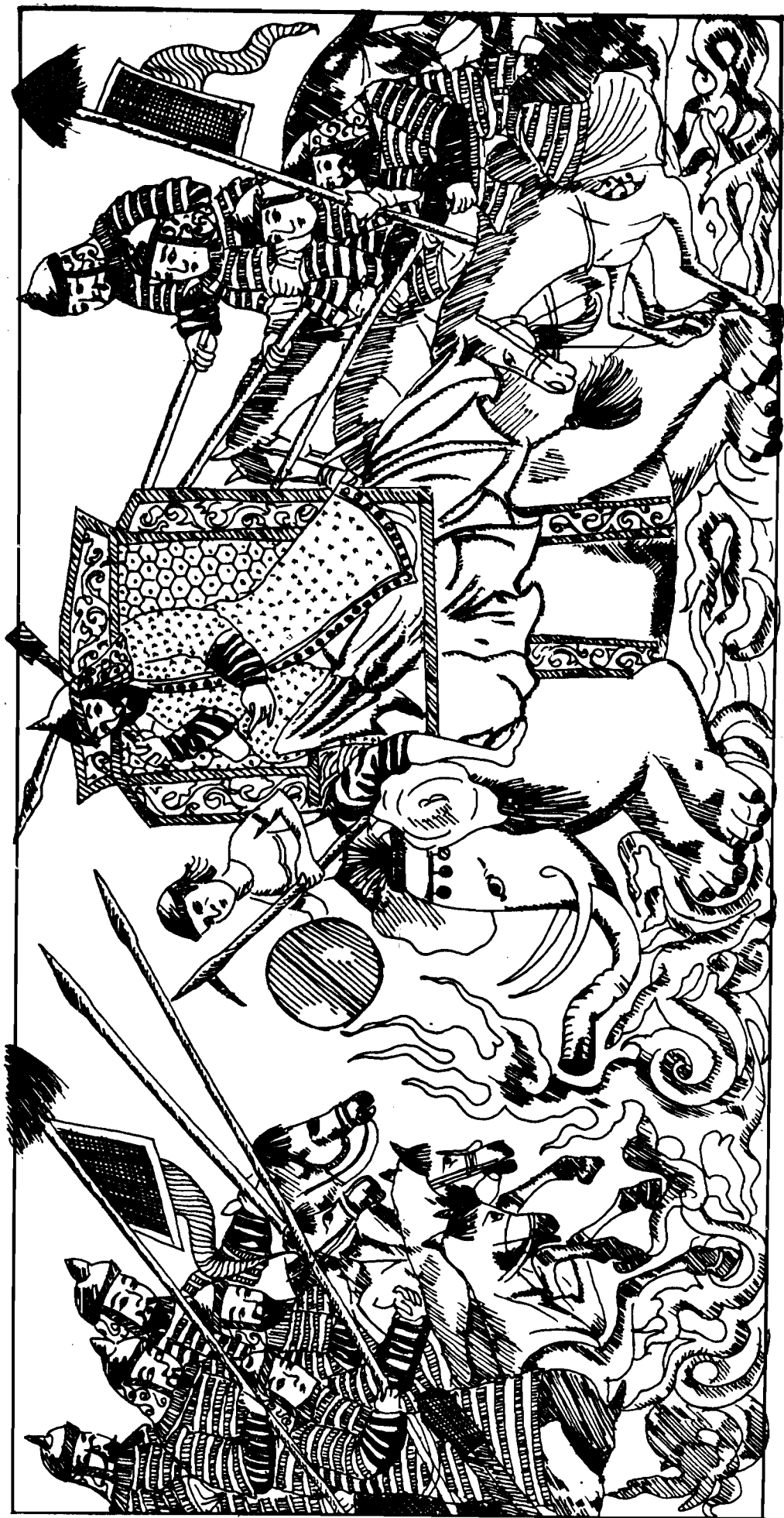
2. सुबुक्तगीन के बेटे महमूद और इस्माइल के मध्य युद्ध का दृश्य।
यह चित्र इस तथ्य को इंगित करता है कि मध्य एशिया के मुस्लिम शासकों द्वारा भी युद्धों में हाथियों का प्रयोग काफी सफलतापूर्वक किया गया।

बोध प्रश्न 2

1) I) कॉलम ब को कॉलम अ से मिलाइये :

अ	ब
युद्ध	**वर्ष**
कोल	1193
तराइन	1194
दिल्ली	1198-99
अन्हिलवाड़ा	1192
कन्नौज	1195-96

II)

अ	ब
वंश	**स्थान**
गहढ़वाल	बुन्देलखण्ड
चौहान	दिल्ली
तोमर	अजमेर
चालुक्य	कन्नौज
चन्देल	गुजरात

2) तुर्कों की सफलता के कारणों की व्याख्या 10 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

14.6 संघर्ष एवं सुदृढ़ीकरण : सन् 1206-1290 ई०

दिल्ली सल्तनत के इतिहास में सन् 1206-1290 ई० तक का समय निर्माणात्मक एवं चुनौतियों से भरपूर रहा। इस काल की विशेषता यह थी कि जहाँ एक ओर गौर वंश के शासक वर्ग में आंतरिक बहु-केन्द्रित संघर्ष था, वहीं तुर्कों को नवउदित राजपूत विद्रोहों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा।

सन् 1206 ई० में मौहम्मद गौरी की अचानक मृत्यु के पश्चात् उसके तीन महत्वपूर्ण सेनापतियों ताजुद्दीन यल्दूज़, नासिरूद्दीन कुबाचा एवं कुतुबुद्दीन ऐबक के बीच सर्वोच्चता के लिए संघर्ष शुरू हो गया। यल्दूज़ के पास अफ़गानिस्तान और सिंध के बीच के मार्ग पर स्थित कर्मन तथा संकूरन के क्षेत्र थे। कुबाचा का उच्छ पर महत्वपूर्ण नियंत्रण था। जबकि ऐबक को पहले से ही मौहम्मद गौरी द्वारा "वायसराय" के रूप में नियुक्त किया जा चुका था और वह भारत स्थित तुर्क सेना का सेनापति भी था। तकनीकी तौर पर वह अभी भी एक गुलाम ही था, किन्तु उसके स्वामी मौहम्मद गौरी की मृत्यु के तुरन्त बाद उसको "सुल्तान" की उपाधि प्रदान की गई। औपचारिक तौर पर दिल्ली सल्तनत की स्थापना एक स्वतंत्र पहचान के रूप में इस घटना से ही की जाती है। आगामी घटनाक्रम ने इसे वास्तविक स्वरूप प्रदान किया।

अपने चार वर्ष के संक्षिप्त शासनकाल में पंजाब पर अधिकार करने की यल्दूज़ की अभिलाषा को निष्क्रिय करने के लिए ऐबक (मृत्यु 1210 ई०) अपनी राजधानी को लाहौर ले गया। ख्वारिज़्म शाह के दबाव के कारण जो दृढ़ता के साथ गौर की ओर बढ़ रहा था, यल्दूज़ स्वयं को भारत में

ऐबक के उत्तराधिकारी के रूप में उसके दामाद इल्तुतमिश ने गद्दी संभाली और वह अपनी राजधानी वापस दिल्ली ले आया। तुर्कों द्वारा विजित क्षेत्र उनके नियंत्रण से बाहर हो गए थे और अधीनस्थ किए गए राजपूत सरदारों ने नजराना देना बंद कर दिया था तथा उनकी प्रभुसत्ता मानने से इन्कार कर दिया। इल्तुतमिश के शासन काल की एक चौथाई शताब्दी (सन् 1210 ई०-1236 ई० तक) के दौरान उन क्षेत्रों पर सल्तनत के प्रभुत्व का स्थापित करने पर बल दिया गया, जिसको वे खो चुके थे। सन् 1215 ई० में यल्दूज़ को तराइन में पराजित कर दिया और सन् 1217 ई० में इल्तुतमिश ने कुबाचा से लाहौर प्राप्त कर लिया और इसे अपने एक गवर्नर के अधीन कर दिया।

इस घटना के तीन वर्ष के अंदर ही, जलालुद्दीन मंगबर्नी का पीछा करते हुए मंगोल चंगेज़ खाँ के नेतृत्व में सिंधु नदी पर प्रकट हुए। जलालुद्दीन ख्वारिज़्म शासक का पुत्र था जिसने पंजाब में शरण ले रखी थी। इकाई 13 में हमने मंगोलों द्वारा नष्ट किए गए इस्लामी राज्यों का वर्णन किया था। इसके बाद से ही मंगोल दिल्ली सल्तनत के शासकों के लिए चिंता का विषय बन रहे। 13-14वीं सदी के दौरान मंगोलों द्वारा किए गए आक्रमणों के विषय में हम इसी इकाई के आगामी भाग में विवेचन करेंगे।

यद्यपि मंगोलों की उपस्थिति ने उत्तर-पश्चिम में सल्तनत को सुदृढ़ करने की इल्तुतमिश की योजना को असफल कर दिया था, लेकिन इसने उन परिस्थितियों को उत्पन्न किया जिससे कुबाचा, जिसके नियंत्रण में उच्छ था, का राज्य नष्ट हो गया। उसको मंगबर्नी के आक्रमण का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप, इल्तुतमिश ने भटिण्डा, कुहराम तथा सरसुती पर अधिकार कर लिया। 1226 ई० के आसपास उसने दो तरफा प्रहार मुल्तान एवं उच्छ पर भी किया। कुबाचा पराजित हो गया और स्वयं को सिंधु नदी में डुबो दिया। दिल्ली सल्तनत के लिए उत्तर-पश्चिम पर अधिकार करना अब संभव हो गया। राजपूताना में रणथम्भौर, मन्दौर, जालौर, बयाना एवं थानगीर को पुनः प्राप्त करने में भी तुर्क सफल रहे। सन् 1225 ई० के बाद इल्तुतमिश पूर्व की ओर अग्रसर हुआ। यदा-कदा सैनिक सफलताओं के अतिरिक्त, बंगाल में लखनौती तथा बिहार के शासक सल्तनत के प्रभुत्व की अवहेलना करते रहे। इल्तुतमिश की उपलब्धियों का आकलन करते हुए एक आधुनिक इतिहासकार ने लिखा है कि :

> "प्रशासनिक तंत्र की प्राथमिक रूपरेखा प्रदान करने के कारण सल्तनत उसकी ऋणी थी। उसने निरंकुश राजतंत्र की नींव रखी और बाद में इस राजतंत्र की बदौलत खलजियों के अधीन इसका उपयोग सैनिक साम्राज्यवाद के तंत्र के रूप में हुआ। जहाँ ऐबक ने दिल्ली सल्तनत और इसके संप्रभु स्तर की नींव रखीं, वहीं इल्तुतमिश निश्चित रूप से इसका प्रथम राजा था।"

इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद तुर्कों के मध्य गुटबाजी एवं कलह और अधिक तेजी से स्पष्ट हुआ। लगभग तीस वर्षों के दौरान इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी के रूप में चार शासकों ने दिल्ली सल्तनत पर शासन किया। इन वर्षों के दौरान उच्च राजनीति में निर्णय लेने वाले अति महत्वपूर्ण समूह को **तुर्कान-ए-चिहिलगानी बन्दागान-ए शमसी** (इल्तुतमिश के 40 तुर्क गुलाम अधिकारीगण) के नाम से जाना जाता था। 14वीं सदी ई० के इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बर्नी ने इन संकटकालीन वर्षों का संक्षिप्त एवं रोचक वर्णन किया है। वह लिखता है :

> "शमसुद्दीन (इल्तुतमिश) के शासन काल में .... अति महत्वपूर्ण **मालिकों, वज़ीरों**, जो शिक्षित, बुद्धिमान एवं योग्य थे, की उपस्थिति के कारण सुल्तान के दरबार में एक स्थिरता आई .... किन्तु सुल्तान की मृत्यु के बाद .... उसके चालीस गुलाम अधिकारियों ने दरबार की राजनीति में सर्वोच्चता प्राप्त कर ली .... सर्वोच्चता प्राप्त करने वाले ये तुर्क गुलाम अधिकारी जो कुलीन वर्ग से संबंधित थे, ... शमसुद्दीन के उत्तराधिकारियों के शासन काल में .... विभिन्न बहानों द्वारा नष्ट कर दिए गए।"

बर्नी ने अपने मुख्य विवरण में तत्कालिक घटनाक्रमों पर भी प्रकाश डाला है। सन् 1235-1265 ई० के बीच राजनीतिक घटनाक्रम सिंहासन एवं सैनिक अभिजात वर्ग के बीच संघर्ष के इर्द-गिर्द घूमता रहा। सैनिक अभिजात वर्ग अपने विशेषाधिकारों की स्थिति को बनाए रखने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था और अक्सर संतुलन इस सैनिक अभिजात वर्ग के पक्ष में ही रहा।

इन परिस्थितियों में सल्तनत के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह लग गया। राजनीतिक अस्थिरता उस समय और अधिक तीव्र हो गई जब छोटे-छोटे राजपूत सरदारों एवं स्थानीय सरदारों ने केन्द्र की अवज्ञा करनी शुरू कर दी। इसके अतिरिक्त, मंगोल आक्रमणकारी अभी भी पंजाब के अंदर तथा आसपास के क्षेत्र में लगातार सक्रिय थे।

दिल्ली सल्तनत
c.1235 A.D.
सीमाएँ
काबुल
गज़नी
झेलम न.
चेनाब न.
व्यास न.
लाहौर
रावी न.
सिंधु न
मुल्तान
दीपालपुर
भटिन्डा
उच्छ
भटनेर
कटेहर
नेपाल
इन्द्रप्रस्थ
दिल्ली
बरन
बदायूँ
अलीगढ़
तिरहुत
कूच बिहार
नागौर
मन्दौर
अजमेर
बयाना
कन्नौज
इटावा
ग्वालियर
रणथम्भौर
कालपी
गंगा न.
थट्टा
जालौर
लखनौती
(गौड़)
मुंगेर
बोधगया
अन्हिलवाडा
उज्जैन
नाडिया
नर्मदा न.
महानदी
जाजनगर
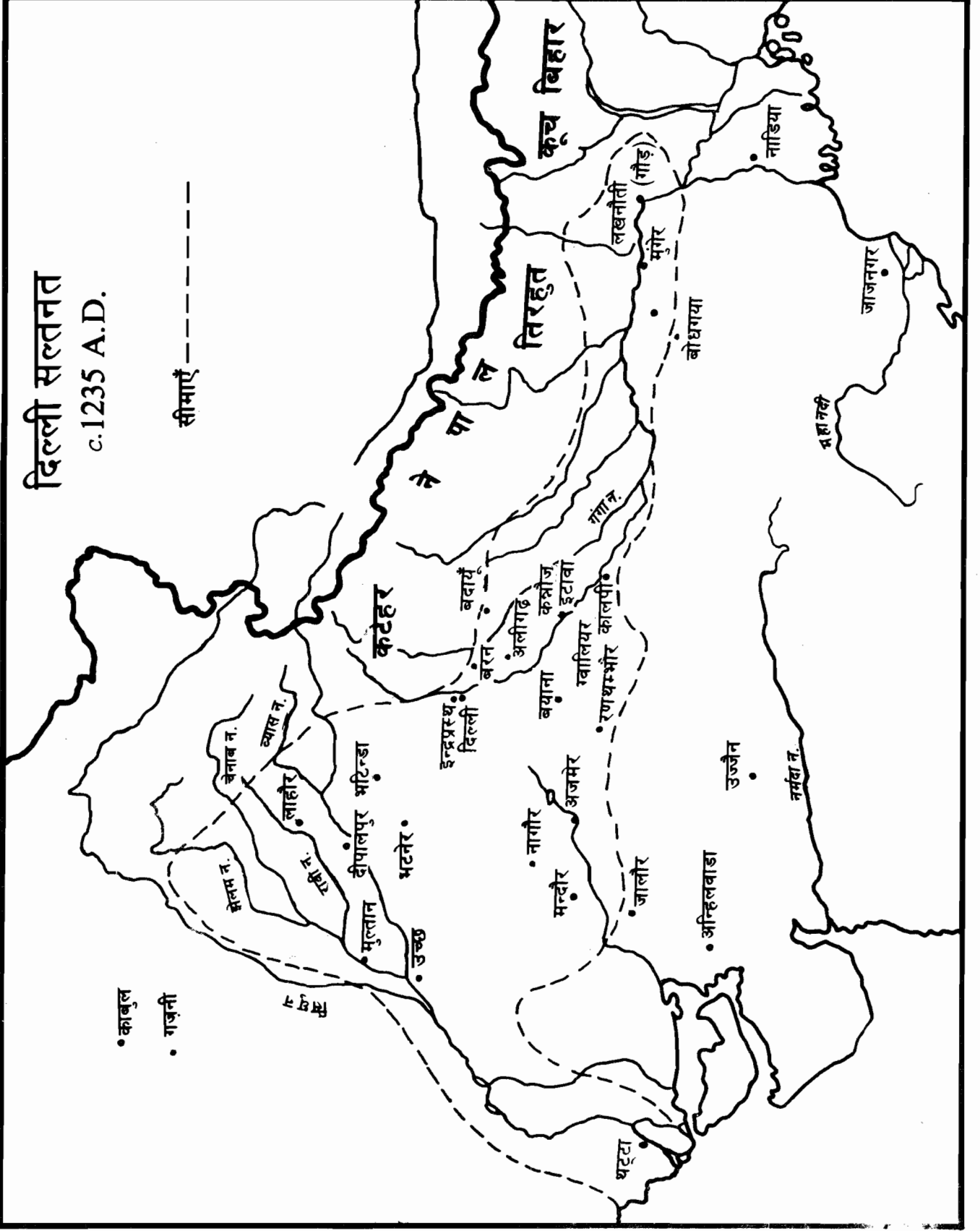
1265 ई० में बलबन के सिंहासनारोहण के साथ ही सल्तनत को एक "लौह-इच्छाशक्ति वाला" शासक प्राप्त हो गया। बलबन ने स्वयं के लिए दो उद्देश्य निर्धारित किए :

i) दरबारी उत्सवों की शान-शौकत द्वारा ताज की प्रतिष्ठा को स्थापित करना। सासानिद परम्पराओं का पालन करना, जिससे शासक का स्थान आम जनता से भिन्न हो और सुल्तान उनके लिए भय का प्रतीक बन जाए।

ii) तुर्कों की शक्ति को और सुदृढ़ करना, विद्रोहों का दृढ़ता के साथ दमन करना और प्रशासनिक तंत्र को चुस्त करना।

बलबन की मृत्यु के बाद सिंहासन के लिए एक बार फिर संघर्ष शुरू हो गया। बलबन ने अपने बड़े पुत्र मौहम्मद के पुत्र कै खुसरो को अपना उत्तराधिकारी नामज़द किया था, लेकिन कुलीनों ने बुगरा खाँ के पुत्र कैकूबाद को सिंहासन पर बैठाने में मदद की। दो वर्षों से भी अधिक समय तक सिंहासन के लिए संघर्ष चलता रहा। अंततः जलालुद्दीन खलजी, जो उस समय कुलीन वर्ग में प्रमुख था, ने सिंहासन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। उसकी इस कार्यवाही का कड़ा विरोध हुआ, क्योंकि उस समय यह समझा जाता था कि खलजी तुर्क नहीं है, बल्कि वह एक अन्य जाति से संबंधित है। सन् 1206-1290 ई० के बीच खलजी महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे। उदाहरण के लिए, बख्तियार खलजी बंगाल का **मुक्ती** था। यहाँ तक की जलालुद्दीन खलजी स्वयं पश्चिमी पंजाब में सुनाम का **मुक्ती** था।

जलालुद्दीन खलजी ने अपने राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करना शुरू किया, किन्तु सन् 1296 ई० में उसके भतीजे अलाउद्दीन खलजी ने उसका वध कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। लगभग 20 वर्षों तक अलाउद्दीन खलजी के अधीन सल्तनत ने विजय की नीति का अनुसरण किया। इसके विषय में आप इकाई 15 में पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 3

1) कुतुबुद्दीन ऐबक ने यल्दूज की शक्ति को कैसे कुचला? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) भारत में तुर्की शासन का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश था। इसकी व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

14.7 मंगोल समस्या

हम इकाई 13 में पहले ही मध्य एशिया एवं ईरान में मंगोलों की शक्ति के उदय के विषय में विवेचन कर चुके हैं। यहाँ पर हम भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर उत्पन्न मंगोल खतरे एवं उसके परिणामों को मुख्य रूप से रेखांकित करेंगे।

हिन्दुकुश पर्वत द्वारा विभाजित काबुल-गज़नी-कंधार रेखा पर दिल्ली सल्तनत का नियंत्रण न केवल "वैज्ञानिक सीमाओं" के स्थायित्व के लिए महत्वपूर्ण था, अपितु यह भी एक सत्यता थी कि यह मार्ग भारत को उस बड़े सिल्क मार्ग (silk route) से जोड़ता था, जो चीन से मध्य एशिया एवं ईरान होकर गुजरता था। लेकिन मध्य एवं पश्चिम एशिया में होने वाले परिवर्तनों के कारण

नव-स्थापित तुर्की राज्य इस कार्य को न कर सका। मंगोल आक्रमणों के कारण उत्पन्न स्थिति ने दिल्ली के सुल्तानों के प्रसार को चिनाब नदी तक ही सीमित रखा, जबकि सतलज का क्षेत्र संघर्षों का मुख्य केन्द्र बन गया। इस तरह, सिंधु नदी भारत की मात्र एक ''सांस्कृतिक सीमा'' बनकर ही रह गई और सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए नियंत्रण रेखा केवल सिंधु नदी के पश्चिम तक ही सीमित थी।

प्रो. के.ए. निज़ामी ने सल्तनत द्वारा मंगोल खतरे की ओर अपनाए गए दृष्टिकोण को तीन भागों में बांटा है : (i) अलगाववाद, (ii) तुष्टिकरण, और (iii) विरोध।

इल्तुतमिश ने ''अलगाववादी'' नीति का अनुसरण किया। दिल्ली के सुल्तानों को मंगोलों के खतरे का सामना तभी से करना पड़ा जब सन् 1221 ई० में मंगोलों ने ख्वारिज़्म साम्राज्य का अंत कर दिया और चंगेज़ ख़ाँ राजकुमार जलालुद्दीन मंगबर्नी का पीछा करते हुए भारत की सीमाओं पर आ पहुँचा था। जलालुद्दीन को जब कोई विकल्प दिखाई नहीं पड़ा, तब उसने सिंधु नदी को पार किया और सिंधु के पूर्वी क्षेत्र में घुस गया। इल्तुतमिश मंगोलों को, भारत की सीमा तक पहुंच जाने के कारण, नज़रअंदाज नहीं कर सकता था। लेकिन उसके लिए सिंधु क्षेत्र में मंगबर्नी की उपस्थिति भी समान रूप से महत्वपूर्ण थी। सुल्तान को भय था कि कुबाचा तथा खोखर मंगबर्नी के साथ मिलकर कहीं गठजोड़ न कर ले। लेकिन राजनीतिक सत्ता के लिए कुबाचा एवं मंगबर्नी के मध्य गठबंधन नहीं हो सका, बल्कि वे सत्ता के लिए आपस में ही भिड़ गए। परन्तु इसी बीच उसने खोखरों से वैवाहिक संबंध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इससे उत्तर-पश्चिम में मंगबर्नी की स्थिति और मज़बूत हो गई। अता मलिक ने अपनी पुस्तक **तारीख-ए-जहाँगुशा** में लिखा है कि इल्तुतमिश ने मंगबर्नी की उपस्थिति से उस खतरे का अनुमान कर लिया था, जिसके अनुसार ''वह उसके ऊपर अपनी सत्ता को स्थापित कर उसको नष्ट कर सकता था।'' इसके अतिरिक्त इल्तुतमिश भली-भाँति सल्तनत की कमज़ोरियों से भी परिचित था। इन्हीं कारणों से बाध्य होकर इल्तुतमिश ने ''अलगाव'' की नीति का अनुसरण किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि चंगेज़ ख़ाँ ने अपने दूत को इल्तुतमिश के दरबार में भेजा था। सुल्तान के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ कह पाना कठिन है, लेकिन इतना निश्चित है कि जब तक चंगेज़ ख़ाँ जीवित रहा (मृत्यु 1227 ई०), तब तक इल्तुतमिश ने उत्तर-पश्चिम की ओर कोई अभियान नहीं भेजा। यह संभव हो सकता है कि दोनों के मध्य एक-दूसरे पर आक्रमण न करने का कोई समझौता हुआ हो। इल्तुतमिश ने कूटनीतिक तरीके से ख्वारिज़्म राजकुमार के साथ राजनीतिक गठबंधन करने की अवहेलना की। ख्वारिज़्म राजकुमार ने आइन-उल मुल्क को इल्तुतमिश के दरबार में अपने राजदूत के रूप में इस प्रार्थना के साथ भेजा कि वह उसको राजनीतिक शरण दे। किन्तु इल्तुतमिश ने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि ठहरने के लिए अनुकूल वातावरण नहीं है। दूसरे, उसने उसके दूत का वध करा दिया। मिन्हाज सिराज उल्लेख करता है कि इल्तुतमिश ने मंगबर्नी के विरुद्ध सैनिक अभियान भेजा। किन्तु मंगबर्नी ने किसी तरह से युद्ध को टाल दिया और वह सन् 1224 ई० में अंततः भारतीय भूमि को छोड़ गया।

इल्तुतमिश की ''अलगाववाद'' की नीति में परिवर्तन, ''तुष्टीकरण'' की नीति की ओर बदलाव, उस समय हुआ जबकि सल्तनत की सीमाओं को लाहौर एवं मुल्तान तक बढ़ा दिया गया। इस नीति के कारण मंगोल आक्रमणों के सम्मुख सल्तनत प्रत्यक्ष तौर पर आ गई क्योंकि अब दोनों के मध्य कोई मध्यवर्ती राज्य न रहा था। बमियान के हसन करलग ने रजिया सुल्तान के सम्मुख मंगोल विरोधी गठबंधन बनाने का प्रस्ताव रखा, किन्तु उसने इस प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। इससे स्पष्ट है कि उसने मंगोलों के प्रति ''तुष्टीकरण'' की नीति का अनुसरण किया। हमको इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि इस नीति का अनुसरण चंगेज़ ख़ाँ के पुत्रों के बीच साम्राज्य के बंटवारे के कारण किया गया, जिससे कि उनकी शक्ति कमज़ोर हो गई। दूसरा कारण यह भी था कि उस समय मंगोल पश्चिम एशिया में व्यस्त थे।

चाहे कोई भी कारण रहे हों, किन्तु 1240-1266 ई० के मध्य मंगोलों ने प्रथम बार भारत पर अधिकार करने की नीति का अनुसरण किया और दिल्ली के साथ एक-दूसरे पर ''आक्रमण न करने के समझौते के'' स्वर्णिम युग का अंत हो गया। इस दौरान सल्तनत को मंगोलों से गंभीर खतरा बना रहा। इसका मुख्य कारण मध्य एशिया में होने वाला परिवर्तन था। ट्रांस ऑक्सियाना के मंगोल ख़ाँ के लिए शक्तिशाली ईरानी शासन, मंगोल खानेत, का सामना करना कठिन था। इसलिए उसने अपने भाग्य को परखने के लिए भारत की ओर कूच किया।

सन् 1241 ई० में तैर बहादुर ने लाहौर पर आक्रमण किया और नगर को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। इसी के साथ सन् 1245 ई० एवं 1246 ई० में दो और आक्रमण किए गए। नासिरूद्दीन के शासन काल में बलबन द्वारा किए गए विशेष प्रयासों के बावजूद सन् 1241-66 ई० के बीच

सल्तनत की सीमाएँ सिमट कर ब्यास नदी तक रह गईं। इसके बावजूद भी कुछ समय तक ''तुष्टीकरण की नीति जारी रही। सन् 1206 में हलागू के दूत का दिल्ली में उचित सम्मान किया गया और इसी तरह के कूटनीतिक सम्मान का परिचय हलागू ने भी दिया।

दिल्ली सल्तनत की नीति में विशेष परिवर्तन बलबन के सत्तासीन होने के बाद ही हुआ। कुल मिलाकर यह ''विरोध'' का समय था। बलबन अधिकतर समय दिल्ली में ही रहा उसकी मुख्य ताकत मंगोलों को रोके रहने में ही लगी रही और उसने उनको ब्यास नदी से दूर रखने में सफलता भी प्राप्त की। बर्नी ने लिखा है कि तामीर खाँ तथा आदिल खाँ जैसे कुलीनों ने बलबन को मालवां एवं गुजरात पर आक्रमण करने का सुझाव दिया और उसे प्रसारवादी नीति का अनुसरण करने की सलाह दी। किन्तु बलबन ने उत्तर दिया :

> ''जबकि मंगोलों ने इस्लाम की संपूर्ण भूमि पर अधिकार कर लिया है, लाहौर को नष्ट कर दिया है और इसे आधार बनाकर प्रत्येक वर्ष हमारे देश पर आक्रमण करते हैं .... तब मैं अपनी राजधानी को कैसे छोड़ सकता हूँ। मंगोल निश्चय ही इस अवसर का लाभ उठाते हुए दिल्ली पर अधिकार कर लेंगे और दोआब को रौंद डालेंगे। अपने ही राज्य में शाँति बनाए रखना और अपनी शक्ति सुदृढ़ करना दूसरे देशों के क्षेत्रों पर आक्रमण करने से कहीं बेहतर है, जबकि अपना स्वयं का राज्य असुरक्षित हो।''

बलबन ने मंगोलों के विरुद्ध ''बल एवं कूटनीति'' दोनों का उपयोग किया। उसने अपनी सुरक्षा रेखा को मजबूत करने के प्रयत्न किए। ब्यास नदी के पार मंगोलों के विस्तार को रोकने के लिए भटिण्डा, सुनाम, तथा समाना के किलों की मरम्मत कराई। बलबन ने मुल्तान एवं उच्छ पर अधिकार करने में भी सफलता प्राप्त की, किन्तु पंजाब में उसकी सेनाओं पर मंगोलों का भारी दबाव बना रहा। बलबन के पुत्र राजकुमार मौहम्मद को प्रत्येक वर्ष मंगोलों के विरुद्ध सैनिक अभियान भेजने पड़ते थे। मंगोलों से मुल्तान की ही रक्षा करते हुए सन् 1285 ई० में राजकुमार की मृत्यु हुई। परन्तु एक वास्तविकता यह भी थी कि सन् 1295 ई० तक मंगोलों ने दिल्ली पर अधिकार करने के प्रति कोई विशेष उत्सुकता नहीं दिखाई।

खलजियों के शासनकाल में मंगोल आक्रमणों का क्षेत्र और आगे की ओर बढ़ गया। सन् 1299 ई० में मंगोलों ने कुतलग ख्वाजा के नेतृत्व में प्रथम बार दिल्ली पर आक्रमण किया। तब से दिल्ली मंगोल आक्रमणों का एक स्थायी लक्ष्य बन गई। दूसरी बार कुतलग ख्वाजा ने दिल्ली पर उस समय आक्रमण किया जब अलाउद्दीन चित्तौड़ के अभियान में व्यस्त था। यह आक्रमण इतना भयंकर था कि मंगोलों ने दिल्ली में व्यापक स्तर पर सर्वनाश किया। दिल्ली में उनके रहते अलाउद्दीन खलजी नगर में प्रवेश करने का प्रयास न कर सका।

मंगोलों के लगातार होने वाले आक्रमणों ने अलाउद्दीन को स्थायी समाधान ढूँढने के लिए बाध्य किया। उसने व्यापक स्तर पर सैनिकों की भर्ती की और सीमावर्ती किलों को मज़बूत किया। फलस्वरूप मंगोलों को पहले सन् 1306 ई० में तथा फिर 1308 ई० में पराजय का सामना करना पड़ा। मंगोलों की इस पराजय का एक कारण 1306 ई० में मंगोल सरदार दावा खाँ की मृत्यु और उसकी मृत्यु के बाद वहाँ गृह युद्ध का शुरू हो जाना भी था। इससे मंगोल बहुत अधिक कमजोर पड़ गए और अब उनका अस्तित्व एक शक्ति के रूप में समाप्त हो गया। इससे दिल्ली के सुल्तानों को अपनी सल्तनत की सीमाओं का प्रसार करने में सहायता मिली। मंगोलों का अंतिम महत्वपूर्ण आक्रमण तरमाशिरीन के नेतृत्व में मौहम्मद तुगलक के शासन काल में हुआ।

इस तरह दिल्ली के सुल्तान मंगोल समस्या का समाधान करने में सफल रहे और मंगोलों से अपने राज्य को बचाए रखने में सफलता प्राप्त की। इससे सल्तनत की शक्ति भी स्पष्ट होती है। इसके अतिरिक्त, मंगोलों द्वारा मध्य एवं पश्चिमी एशिया में किए गए सर्वनाश के कारण बड़ी संख्या में विद्वान, दार्शनिक, कलाकार एवं अन्य लोग भाग कर दिल्ली आ गए और उन्होंने इसको मुस्लिम संस्कृति के एक महान् नगर के रूप में रूपांतरित कर दिया।

14.8 भारत में तुर्की विजय के राजनीतिक परिणाम

भारत की तुर्की विजय के कारण भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में दूरगामी परिवर्तन हुए।

उनकी विजय का पहला बड़ा परिणाम यह हुआ कि सामंतीय एवं बहु-केन्द्रित राजनीति का स्थान

प्राप्त थे। "सल्तनत" जिसका हम इकाई 16 में वर्णन करेंगे, उसमें इसके इसी स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है।

जिस मुख्य संस्था के कारण सल्तनत संभव हो सकी, वह **इक्ता** व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अनुसार, राजस्व अनुदान हस्तांतरित किए जाते थे। इस संस्था को सैलजुकों ने अपने अब्बासी शासन क्षेत्रों में अपनाया था, जिसमें उन्होंने अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए। आप खंड 5 तथा 6 में **इक्ता** के इतिहास के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे। यहाँ पर हम इसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे, जिससे कि आप यह चित्रण कर पाएँ कि कैसे इसने भिन्न प्रकार की राजनीतिक प्रणाली को आधार उपलब्ध कराया। इस व्यवस्था के अंतर्गत राजा के अधिकारियों को राजस्व एकत्रित करने तथा सेना एवं अश्वरोहियों के रख-रखाव के लिए भू-क्षेत्र अनुदान दिए जाते थे। इन अधिकारियों को **मुक्ती** कहा जाता था। तुर्कों से पूर्व भूमि-अनुदान प्राप्तकर्ताओं को स्थायी **मालिकाना** अधिकार प्राप्त थे, किन्तु **इक्ता** के अंतर्गत इनका स्थानांतरण होता रहता था और एक विशेष स्थान पर साधारणतया वे तीन या चार वर्ष तक ही रहते थे।

अगर संपूर्ण सल्तनत के दृष्टिकोण से देखें तो मालूम पड़ता है कि यह व्यवस्था अनुदान प्राप्तकर्त्ता को केन्द्रीय सत्ता पर काफी हद तक निर्भर बना देती थी किन्तु परवर्ती राजनीतिक प्रणालियों में यह संभव नहीं था। जहाँ एक ओर **राजा, राणा** एवं **ठाकुर**, देश की एकता बनाए रखने में असफल रहे, वहीं पर तुर्कों ने "अखिल भारतीय स्तर के प्रशासन" की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की और ऐसा उन्होंने दिल्ली की सरकार के नियंत्रण में मुख्य नगरों एवं बड़े व्यापारिक मार्गों को लाकर किया।

इक्ता व्यवस्था ने जहाँ एक ओर निरंकुश राज्य के लिए आधार उपलब्ध कराया, वहीं यह कृषि के अतिरिक्त उत्पाद को एकत्रित करने का एक साधन भी बन गया। तुर्क अपने साथ नगरों में रहने की परम्परा को लेकर आए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के ग्रामीण अंचलों से अतिरिक्त उत्पाद भू-करों के रूप में नगरों में पहुंचने लगा। इससे पर्याप्त मात्रा में शहरी अर्थव्यवस्था में वृद्धि हुई। तुर्क अपने साथ **रहट** एवं **चरखे** को लेकर आए। **रहट** से कृषि उत्पादन बढ़ाने में काफी सहायता मिली (विस्तृत जानकारी के लिए खंड 6 की इकाई 22 को पढ़िए)।

बोध प्रश्न 4

1) मंगोलों के आक्रमणों का सामना करने के लिए दिल्ली के सुल्तानों ने **अलगाववाद, तुष्टीकरण** तथा **विरोध** – तीन शस्त्रों का अनुसरण किया। व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) कॉलम ब को कॉलम अ से मिलाइये :

I)

अ	ब
फख्र मुदब्बिर	तारीख-ए-फिरोज़शाही
अता मलिक जुवैनी	तबकात-ए नासिरी
मिन्हाज सिराज	आदाब-उल हर्ब व अल शुजात
ज़ियाउद्दीन बर्नी	तारीख-ए जहाँगुशा

II)

अ	ब
चंगेज़ खाँ की मृत्यु	1241 ई०
जलालुद्दीन मंगबर्नी का वापस लौटना	1260 ई०
हलागू द्वारा अपने दूत को दिल्ली भेजना	1227 ई०
तैर बहादुर का आक्रमण	1224 ई०

3) तुर्कों की भारत विजय के राजनीतिक परिणामों की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

14.9 सारांश

इस इकाई का प्रारंभ तुर्की आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति से होता है। उस समय भारत एक एकीकृत राजनीतिक इकाई न था, बल्कि अनेक राज्यों में विभाजित था और इन राज्यों पर स्वतंत्र रूप से राजाओं एवं सरदारों द्वारा शासन किया जाता था। मौहम्मद गौरी ने इन राज्यों को अपने अधीन करने का प्रयास किया और इस प्रयास की अंतिम परिणति तराइन के मैदान में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के रूप में हुई। इस घटना ने भारत में तुर्क शासन की नींव रखी। मौहम्मद गौरी के प्रस्थान करने के बाद उसका सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में तुर्क शक्ति की स्थापना के कार्य में जुट गया। इस प्रक्रिया के दौरान उसने यल्दूज़, और उन मुइज़ी दासों का दमन किया, जिन्होंने भारत में मुइज़ी शासन पर अपना दावा पेश किया। लेकिन वह कुबाचा का दमन करने में असफल रहा। यह कार्य इल्तुतमिश के लिए छोड़ दिया गया। इल्तुतमिश ने न केवल मुइज़ी साम्राज्य का प्रसार किया अपितु उसने 'चालीस के गुट' के नाम से प्रसिद्ध कुलीनों की मदद से प्रशासनिक तंत्र को संगठित एवं मजबूत बनाया। उसने कुछ सासानिद (Sasanid) संस्थाओं जैसे **इक्ता** को लागू किया। इससे प्रशासन को केंद्रीकृत करने में सहायता मिली। इस इकाई में उन कारकों का भी उल्लेख किया गया है, जो मुख्य रूप से तुर्कों की सफलता के लिए उत्तरदायी थे तथा इसके परिणामों का भी उल्लेख किया गया है। तुर्कों की सफलता का मुख्य कारण उनकी सर्वोच्च सैन्य तकनीक थी। दूसरी ओर, भारतीय सेना की यह विशेषता थी कि वह मुख्यत: "सामंतीय सैन्य भर्ती" पर आधारित थी। तुर्कों की विजय मात्र एक वंश द्वारा दूसरे वंश का स्थानांतरण ही नहीं था बल्कि इस विजय ने भारतीय राजनीति, समाज एवं अर्थव्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव डाले। इन पक्षों का विस्तृत रूप से अध्ययन आप खंड 5 से खंड 8 में करेंगे।

14.10 शब्दावली

बन्दगान-ए शम्सी तुर्कान-ए चिहिलगानी : इल्तुतमिश का तुर्की अधिकारी वर्ग (जो 'चालीस के समूह' के नाम से जाना जाता है)।

बर्बर : मध्य एशिया का एक कबीला।

रहट : पानी खींचने का वह यंत्र जिससे गहराई से पानी खींचा जा सकता है (अधिक विस्तार के लिए खंड 6 देखिए)

चरखा : रूई की कताई का एक यंत्र, जिसमें छः तकलियाँ लगी थीं और जिसे हत्थे की सहायता से घुमाया जाता था।

14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 14.3

2) देखिए भाग 14.3

बोध प्रश्न 2

1) I) 1194, 1192, 1193, 1195-96, 1198-99

   II) कन्नौज, अजमेर, दिल्ली, गुजरात, बुन्देलखण्ड

2) देखिए भाग 14.5

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 14.6

2) देखिए भाग 14.6

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 14.7

2) I) आदाब-उल हर्ब वा अल शुजात, तारीख-ए जहाँगुशा, तबाकत-ए नासिरी, तारीख-ए फिरोज़शाही

   (II) 1227, 1224, 1260, 1241

3) देखिए भाग 14.8